REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 3.8014(UIF)
VOLUME - 6 | ISSUE - 4 | JANUARY – 2017

राष्ट्रीय चेतना के वाहकः मैथिलीशरण गुप्त

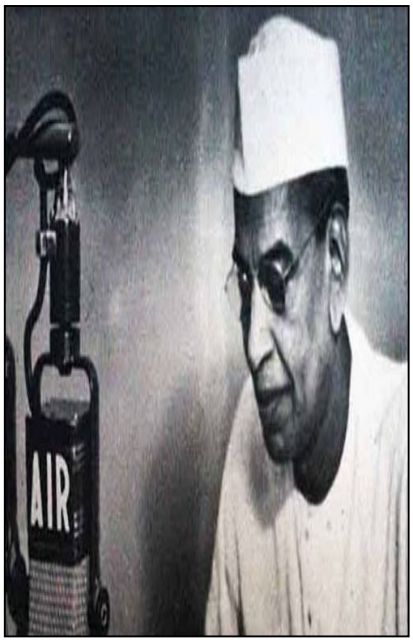

भागिरथ चौधरी
हिन्दी विभाग , एम0एम0टी0एम0 कॉलेज,दरभंगा.

सारांशः

आज हम जिस परिवेश में जी रहे हैं, उसमें राष्ट्रीयता की परिकल्पना महत्त्वपूर्ण हो गई है, राष्ट्रीयता को लेकर कई तरह की बातें की जा रही हैं, इसलिए सर्वप्रथम हमें 'राष्ट्रीयता', 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीय चेतना' का अर्थ जानना जरूरी है, जब हम इसके अर्थ को जान लेंगे तभी इनकी संकल्पना पर विचार कर सकते हैं। राष्ट्रीयता की संकल्पना अत्यन्त प्राचीन है। 'राष्ट्रीयता' एक ऐसा मनोभाव है जिसका मूल ध्येय मातृभूमि की स्वतंत्रता और उसकी संस्कृति की रक्षा है। यह एक आध्यात्मिक भावना है जो उन लोगों में उत्पन्न होती है जिनके देश, नस्ल, साहित्य, इतिहास, भाषा, धर्म, राजनीतिक आकांक्षाएँ तथा आर्थिक हित एक समान होते हैं।

प्रस्तावनाः

ऐसी राष्ट्रीयता राजनीतिक एकता तथा स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगी हे और अपना पृथक राज्य स्थापित कर लेती है तो वह 'राष्ट्र' कहलाने लगती है। किसी राष्ट्र के परिवेश से उसके जनमानस का भावनात्मक तादात्मय ही 'राष्ट्रीय चेतना' के अन्तर्गत समष्टि–हित की भावना, लोक–हित की भावना प्रखर रूप से विद्यमान रहती है, अर्थात् जब व्यक्ति–चेतना अपनी सीमा को त्याग राष्ट्रहित में अनंत विस्तार को पा जाती है, 'राष्ट्रीय चेतना' कहलाती है। राष्ट्रीय–चेतना समाज के अपनत्व के उर्वर धरातल पर विकसित होती है इसलिए समाज में आपसी सहयोग और समन्वय की अनिवार्यता होती है। इसी से 'राष्ट्रीय चेतना' में देश–प्रेम की पावनधारा, प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षक अनुराग, धर्म और संस्कृति के प्रति प्रेरक निष्ठा, परम्पराओं के प्रति आस्था, स्वाभिमान के मनमोहक रंग के साथ सर्वजन हिताय की भावना विद्यमान रहती है। मैथिलीशरण गुप्त की कविताओं में राष्ट्रीय–चेतना पर बात करने से पहले 'राष्ट्र' शब्द की संकल्पना पर विचार करना जरूरी है।[1]

'राष्ट्र' कोई भौतिक वस्तु नहीं है और न ही सीमाओं में आबद्ध भूमि और जनसमूह है। राष्ट्र मनुष्य के कर्म और चिंतन की आंतरिक पृष्ठभूमि में जीवन का वह अमूल्य सिद्धान्त है जहाँ मनुष्य कर्म, आस्था और संस्कृति की त्रिधारा में सभ्यताओं को जन्म देता है। अनादिकाल से मनुष्य के भाव जगत में माँ और मातृभूमि का सर्वोच्च स्थान रहा है, इसीलिए भारतीय संस्कृति में जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी उत्कृष्ट माना गया है। जहाँ पृथ्वी मानव का पालन–पोषण करती है, वहाँ मानव पर भी अपनी भूमि की रक्षा का दायित्व होता है। इसी दायित्व को जब एक

जन–समुाय ग्रहण करता है तो वह राष्ट्र के रूप में जाना जाता है। राष्ट्र शब्द 'सर्वधातुभ्यः 'ट्रन' उगादि प्रत्यय के संयोग से 'रासु शब्दे' अथवा 'राज' शोभते' धातु से बनता है। संस्कृत का 'राष्ट्रम' शब्द 'राज+'ट्रन' शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ है राज्य, देश, साम्राज्य आदि। व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र संयुक्त शब्द और पुरूषवाचक संज्ञा है, जिसका अर्थ है–''राज्य में बसने वाला जनसमुदाय जिसमें जिला, प्रदेश, देश, अधिवासी, जनता और प्रजा का समन्वित स्वरूप निहित होता है।' आचार्य रामचंद्र वर्मा ने अपने कोश में राष्ट्र शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है–'किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक–सी रीति–रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है और वे एक शासन में रहते हैं, उसे राष्ट्र कहा जाता है।'' राष्ट्र में 'ईय' प्रत्यय लगने से राष्ट्रीय शब्द बनता है। 'राष्ट्रीय' शब्द 'राष्ट्रें भव इति राष्ट्रीयता' से भी बना है। राष्ट्र+धञ् (रष्ट्रियः) हिंदी भाषा में 'राष्ट्रीय एकस्य भाव इति एकता' के रूप में हैं। राष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है। राष्ट्रीय एकता का मूल आधार सांस्कृतिक एकता को माना जाता है। इसके लिए मनुष्य का साम्प्रदायिक रूप से सहिष्णु होना अतिआवश्यक होता है। 'राष्ट्रीय–एकता' जिस देश में होती है, उसे कोई भी अन्य देश जीत नहीं सकता। इसी के माध्यम से देश के चारित्रिक बल का भी पता चलता है।[2]

राष्ट्र की संकल्पना आधुनिक न होकर प्राचीन है जिसके अन्तर्गत भूमि, उसकी सुरक्षा और सम्पन्नता के लिए राजा और प्रजा की आवश्यक जिम्मेदारियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। लेकिन 19वीं सदी के बाद राष्ट्र की संकल्पना एक नए अर्थ में उभरकर आती है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसकी सुरक्षा के लिए राष्ट्र की सार्वभौम सत्ता की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। जिस तरह हर मनुष्य को उचित उद्देश्य प्राप्ति का अवसर मिलना चाहिए उसी तरह समाज समूह को भी यह अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, इन्हीं विचारों के साथ नए ढ़ंग से राष्ट्र की संकल्पना सामने आई। देश अर्थात स्वदेश की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रता को सार्वभौमत्व माना जाने लगा क्योंकि स्वतंत्रता ही राष्ट्र के ऐहिक वैभव की जीवन–शक्ति है। इस तरह स्वतंत्रता राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण तत्व है। गाँधीजी ने भी राष्ट्र का अभिप्राय 'स्वतंत्र देश' ही माना है। सामान्यतः जनता की मानसिकता अपने देश की न केवल भौगोलिक सीमाओं के साथ अपितु उस भूमि की गौरवशाली इतिहास, परम्पराएँ, संस्कृति, धर्म–दर्शन तथा भाषा आदि तत्वों के साथ समन्वित रूप में जुड़ जाती है (परंतु जब किसी बाह्यसत्ता द्वारा इन राष्ट्रीय तत्त्वों पर प्रहार होता है तब इनकी सुरक्षा के लिए देश की मानसिकता को पुनः जागृत करने की आवश्यकता होती है। परिणामतः देशवासियों के मन में राष्ट्रीयता के प्रति प्रेम और अपनेपन की भावना को जागृत करना होता है, जिसमें देश की स्वतंत्रता, एकता और अखंडता को प्रमुख माना जाता है जिसके लिए बल तथा बलिदान की आवश्यकता हो प्रतिपादित किया जाता है। इस राष्ट्रीयता के अन्तर्गत सहयोग, समन्वय और देश की सम्पन्नता की कामना की जाती है जो अंत में विश्व–बंधुत्व की विशाल भावना तक पहुँचती है। इस तरह राष्ट्र के प्रति राष्ट्र के निवासियों की विशाल और उदात्त मानसिकता ही राष्ट्रीय चेतना है।

प्राचीन समय में राष्ट्रीयता का स्वरूप मूलतः सांस्कृतिक रहा है जिसमें ऋषियों ने अपनी जन्मभूमि को 'माता' के समान महान मानकर अत्यन्त उल्लासित और प्राणमय चंदों में उसकी वंदना की है। यदि हम आदिकालीन साहित्य पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि इस काल के छप्पयों और छंदों में वीरता की ध्वनि तो सुनाई पड़ती है, किंतु उस चेतना में व्यापक राष्ट्रीय चेतना का अभाव है, क्योंकि उस समय कविगण राज्याश्रित होते थे और वे अपने राजाओं के प्रशस्तिगान में, उनके वीरत्व प्रदर्शन में ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा को लगा देते थे। भक्तिकाल के साहित्य को लोकमंगल का साहित्य कहा जाता है। केवल कबीर ऐसे साहित्यकार हुए, जिनके साहित्य में समाज की कुरीतियाँ, कुप्रवृत्तियों के विरूद्ध विद्रोह है, धार्मिक आडम्बरों के प्रति जबरदस्त ललकार है, किंतु राष्ट्रीय चेतना का व्यापक विस्तार तात्कालीन साहित्य में उपलब्ध नहीं है। रीतिकालीन साहित्य में भूषण के काव्य में वीरता के भाव तो देखने को मिल जाते हैं, लेकिन राष्ट्रीय चेतना के नहीं। 1857 की क्रान्ति के बाद अंग्रेजी शासन के आकर्षक बाह्य–रूप तथा उसकी पैनी मार के प्रति उस युग के साहित्यकारों ने जनता का ध्यान आकृष्ट किया और उनमें नई स्फूर्ति भर दी। कवियों ने समाज में व्याप्त निराशा, अंध–विश्वास, कुरीतियों के व्यापक प्रचार तथा दभियों की जी भरकर आलोचना की और समाज के इन विषयों का ऑपरेशन करके सच्चा मार्ग दिखाने का 'श्लाधनीय प्रयत्न

किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग के कवियों ने अपनी पृष्ठभूमि से लाभ उठाकर जनता में उत्साह, विश्वास और आत्म गौरम की भावनाएं जागृत करें। उन्होंने भारतीय जनता को स्वर्णिम अतीत की झांकी दिखाते हुए जन्म–भूमि के प्रति ममता, राष्ट्रीय एकता, देश की दुरवस्था के प्रति क्षोभ, बंगाल के अकाल के बाद वातावरण जैसी जातीय भावनाओं को उकसाकर साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के प्रति विरोध और राष्ट्रीयता का प्रचार जैसी प्रेरणापद बातों को जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया। द्विवेदी युग के कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का प्रमुख स्थान है। गुप्तजी अपनी रचनाओं में पौराणिक युग की समस्याओं और संस्कृति से लेकर अधुनातन बौद्ध, राजपूत, मुस्लिम और सिक्ख संस्कृतियों का संस्पर्श करते हैं। हिंदू संस्कृति और इतर जातियों के भाव–लोक में विहार करते हुए वे अतीत के ताने–बाने का वह उज्जवल पुट बुनते हैं जो हमारी राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करके एकता के सूत्र में आबद्ध करती है तथा राष्ट्र की मूर्च्छित और प्रसप्त चेतनाओं में नई ज्योति भरकर उन्हें समाजोपयोगी और देशोपयोगी बनाने का प्रयत्न करती है।[3]

भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदभव 19वीं सदी के नवजागरण से शुरू होता है। इस जागरण के पीछे पश्चिम के नए ज्ञान–विज्ञान का संपर्क ही नहीं था, साम्राज्यवादी शोषण के कारण देश की आत्मा में जन्मी विरोध और विद्रोह की आग भी थी। प्रारंभ में यह चेतना सांस्कृतिक आन्दोलन के केन्द्र में पनपी। राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, दयानंद, विवेकानंद इसी सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत थे जो समाज के अधंकार युग से निकालने में लगे थे। राजनीतिक राष्ट्रवाद इनके अभियान का एक अंग था, जो बाद में तीव्रतर होकर देश की आजादी की लड़ाई के कारण प्रखर हो उठा। गाँधी और तिलक इसी नवयुग के प्रतीक हैं जो स्वतंत्रता संग्राम में अपनी राष्ट्रवादी, जनोन्मुखी, असांप्रदायिक भूमिका के बावजूद गीता और रामायण को नहीं छोड़ पाए। आधुनिक हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति भारतेंदु की रचनाओं में दिखती है। भारतेन्दु ने सबसे पहले अपने युग के भारत की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया। इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से साहित्य में चली आ रही दरबारी और रीति के बंधनों को कमोवेश तोड़कर भारतीय जनमानस में राष्ट्र प्रेम जगाने की कोशिश की, कुरीतियों को ध्वस्त किया, अतीत की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परंपरा के प्रति आसक्ति जगाई, अंधविश्वासों की होली जलाई, देश रजवाड़ों की मूर्खता पर व्यंग्य किया, देश की दुर्दशा का करूण चित्रण किया और कहीं न कहीं अपनी रचनाओं में अंग्रेजों के दमन और शोषण का विरोध किया। भारतेन्दु द्वारा उद्दीप्त राष्ट्रीय चेतना को ही बाद के कवियों–श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद, रामधारी सिंह दिनकर जैसे कवियों द्वारा पल्लवित और पुष्पित किया गया। निश्छल हृदय वाले, सत्यान्वेशी, धर्मपरायण, आत्मविश्वासी और दृढ़संकल्पी रचनाकार मैथिलीशरण गुप्त भी अपनी रचनाओं भारतेन्दु द्वारा पुष्पित राष्ट्रीयता को एक नई चेतना के रूप में प्रवाहित करते हैं। गुप्तजी ने अपनी अधिकतर रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना को मुखरत से वर्णित किया है, जिसमें प्रमुख–1912 ई.में प्रकाशित तत्कालीन समय की सबसे चर्चित रचना 'भारत–भारती'।

'भारत–भारती' मैथिलीशरण गुप्त की प्रमुख रचना है। यह अपने युग की वह सर्वप्रथम राष्ट्रीय चेतना स्वीकार की गई है जिसने देश की जनता को एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रदान किया। इस पुस्तक में वर्णित राष्ट्रीय चेतना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह अतीत को स्वीकारती अवश्य है पर केवल अतीतोन्मुख न होकर युगीन समाज को वर्तमान और भविष्य से जोड़ती भी है। 'भारत–भारती' की भूमिका में गुप्तजी ने लिखा है–' यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अंतर है, अंतर न कहकर इसे वैचि□य कहना चाहिए। एक वह समय था, जब यह भारत देश विद्या, कला–कौशल में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है इन्हीं बातों का इसमें सोचनीय अभाव हो गया है। परंतु क्या हम लोग सदा अवनति में ही पड़े रहेंगे? संसार में ऐसा कोई काम नहीं जो सचमुच उद्योग से न सिद्ध हो सके, परंतु उद्योग के लिए उत्साह की आवश्यकता है। इसी मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम साधन है। भूमिका से स्पष्ट है कि गुप्तजी भारत वर्ष की तत्कालीन स्थिति से चिंतित हैं उन्हें राष्ट्र की प्राचीन गौरव गाथा आती है और वर्तमान का तेजहीन स्वरूप। इस

तेजहीन स्वरूप को बदलने के लिए गुप्तजी के अनुसार कविता एक प्रमुख साधन है, क्योंकि यह सर्वसुलभ होती है इसीलिए उन्होंने 'भारत–भारती' की रचना की।

पराधीनता के समय इस रचना की महत्ता द्विगुनित हो जाती है, क्योंकि एक हीन जाति को इस रचना में उसका गौरवपूर्ण अतीत याद कराया गया है। वे भारत की प्राचीन महिमा पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

'हां' वृद्ध भारत वर्ष ही संसार का शिरमौर है।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भवभूति का यह प्रथम भंडार है।
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।

स्पष्ट है कि पूर्वजों के इस आदर्श चरित्र के माध्यम से गुप्तजी पराधीनता की पीड़ा से गर्हित भारतीयों में अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति एक सजग, सचेत, कौतुहल पैदा करना चाहते हैं, जिससे उनका आत्मलोचन प्रखर हो सके और वह अपना मार्ग नियत कर सकें। प्राचीन आदर्श पूर्ण भारतीय संस्कृति के आख्यान के लिए वह जिन विचार विंदुओं को उठाते हैं, उनमें प्रमुख हैं–हमारे पूर्वजों का चरित्र, आदर्श और उनका कार्य। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में विद्या, शक्ति, सौहार्द, सुख और शांति का विकास। 'अतीत खंड' में गुप्तजी सूक्ष्म से सूक्ष्म विंदुओं को उठाते हुए उसका अत्यन्त स्पृहणीय चित्रण करते हैं जो पराधीन भारत की सूखती हुई नदियों में रक्त का संचार करने में सक्षम है। वे मनुष्य के अंतरंग चरित्र, दिनचर्या, ब्रह्मबेला में शैय्या छोड़ना, व्यायाम, स्नान के पश्चात ईश्वर का ध्यान करना, दान करना, गौ–सेवा करना तथ इसी प्रकार वे सभ्यता के बहिरंग चीजों का भी बड़ी बारीकी से विश्लेषण करते हैं। उदाहरण के लिए उस समय का साहित्य, भवन, नृतय, संगीत, चित्रकला, वैदिक शिक्षा व्यवस्था आदि उल्लेखनीय है।

संदर्भ सूचीः–

1. आजकल, दिसम्बर–2011
2. आजकल, अगस्त–2011
3. आजकल, मई –2010